विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १२, शनिवार, तारीख २३-८-१९८०
वचनामृत- २७९, २८२, २९४, २९५ प्रवचन-१६

**विचार, मंथन सब विकल्परूप ही है। उससे भिन्न विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायकतत्त्व, सो आत्मा है। उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है; उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है। उसका अस्तिपना ख्याल में आये, 'मैं भिन्न हूँ, यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है। पुरुषार्थ की उग्रता तथा उस प्रकार का आरम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है। पहले विकल्प नहीं टूटता परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है॥२७९॥**

वचनामृत। २७९। प्रभु कहते हैं, प्रभु! विचार चले न, और **मंथन सब विकल्परूप ही है।** दूसरी चीज़ का तो सम्बन्ध है नहीं। शरीर, वाणी, मन का भी सम्बन्ध तो है नहीं। परन्तु अन्दर आत्मा का मंथन चले, विचार चले, वह भी विकल्प है, राग है, आहाहा! विचार और मंथन सब विकल्परूप ही है। विकल्परूप ही है। आत्मा को लाभ का कारण नहीं। आहाहा!

**उससे भिन्न विकल्पातीत...** अन्दर भगवान विकल्प अर्थात् राग की कल्पना के भाव, असंख्य प्रकार की चिन्ताओं के विकल्प, उससे भगवान अन्दर भिन्न है। विकल्पातीत, विकल्प से अतीत है। **एक स्थायी ज्ञायकतत्त्व,...** एक स्थायी अर्थात् नित्य। स्थायी, स्थिर, नित्य, एकरूप नित्य प्रभु **ज्ञायकतत्त्व, सो आत्मा है।** आहाहा! यहाँ तक जाना, प्रभु! तब जन्म-मरण का अन्त आवे। आहा..! जन्म-मरण कर-करके अनन्त अवतार (किये)। आहाहा! निगोद के अवतार अन्तर्मुहूर्त में ६६००० बार। ओहोहो! वैराग्य, वैराग्य, वैराग्य आये। अंतर्मुहूर्त में निगोद के भव। एक शरीर में अनन्त और असंख्य भाग में। अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव अन्तर्मुहूर्त में किये। प्रभु! ऐसे तो अनन्त बार किये।

आहाहा! तेरी सूझ नहीं की। मैं कौन हूँ? मैं क्या हूँ? उसकी सूझ बूझ नहीं ली। आहाहा! **विकल्पातीत एक स्थायी ज्ञायकतत्त्व,...** एक स्थायी स्थिर बिम्ब नित्यानन्द अचल अर्थात् चले नहीं, बदले नहीं, जिसमें पर्याय नहीं है, ऐसा अचल बिम्ब आत्मा, **सो आत्मा है।** आहाहा!

नियमसार में ३८ वीं गाथा है, उसमें भी यही है। प्रभु! तू आत्मा कौन है? विकल्प तो नहीं, परन्तु पर्याय भी नहीं। ३८वीं गाथा में ऐसा कहा है। निश्चय ध्रुव स्वरूप भगवान अनादि-अनन्त एकरूप, चौरासी (लाख) योनि में घूमा, फिर भी जिसका एकरूप कभी पलटा नहीं, ऐसी स्थायी चीज़, ऐसी नित्य अविनाशी चीज़ प्रभु तू (है)। आहाहा! वहाँ उसे आत्मा कहा। ३८ वीं गाथा में एक त्रिकाली को आत्मा कहा, पर्याय को नहीं। वह यहाँ कहा। आहाहा!

**एक स्थायी ज्ञायक तत्त्व, सो आत्मा है।** आहाहा! आत्मा तो यह है। इसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन, सत्य वस्तु जैसी है, ऐसे दर्शन की प्रतीति होती है। सत्य वस्तु जैसी-जैसी जैसे है, उसकी अन्दर दृष्टि करने से सम्यक् अर्थात् सत्य जैसा है, वैसी प्रतीति उत्पन्न होती है। धर्म की शुरुआत वहाँ से है। आहाहा! इसके सिवा दूसरे उपाय चाहे जितने करे, मंथन और... आहाहा! विचार और मंथन।

कलश टीका में लिया है, कलश टीका है, उसमें यह लिया है। विचार और मंथन आदि भी राग है। आहाहा! प्रभु! तू तो निरागी ज्ञायकस्वरूप है न, प्रभु! अकेला चैतन्यबिम्ब, चैतन्यबिम्ब। उसमें तो पर्याय का भी अभाव है। उसको यहाँ निश्चय आत्मा कहते हैं। ३८ (गाथा में) लिया, वही यहाँ बहिन ने कहा। निश्चय है, वही आत्मा है। विकल्पातीत.. आहाहा! और वह स्थायी। पर्याय बिना का स्थायी। आहाहा! ऐसा स्थायी, यह ज्ञायकतत्त्व, सो आत्मा है। आहाहा! दूसरे का करना अथवा दूसरे से कुछ लेना, यह तो उसमें है नहीं, परंतु अपने में अपना विचार और मंथन चले, वह विकल्प भी उसमें है नहीं। ऐसा आत्मा जो है, वह स्थायी है, स्थिर है, नित्य है, अविनाशी, अचल, शाश्वत वस्तु पड़ी है। आहाहा!

**उसमें 'यह विकल्प तोड़ दूँ,...** उसमें,... आत्मा ऐसा दृष्टि में लेकर निश्चय आत्मा.. कठिन बात तो है, प्रभु! परन्तु मार्ग तो यह है, भाई! आहाहा! चँवरेजी नहीं आये हैं? राजकोट गये हैं। आहाहा! **'यह विकल्प तोड़ दूँ, यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी**

**विकल्प ही है;...** आहाहा! स्थायी चीज़ में स्थिर नित्यानन्द प्रभु, उसमें विकल्प आता है कि मैं आत्मा हूँ या मैं ज्ञायक हूँ—ऐसा विकल्प, उसे तोड़ दूँ, वह भी विकल्प है। आहाहा! क्योंकि विकल्प तोड़ने में पर्याय पर दृष्टि जाएगी। अपना शुद्ध प्रभु में से हट जाएगा और पर्याय में आ जाएगा। आहाहा! ऐसा आत्मा।

ऐसा आत्मा सुना भी न हो, वह कब प्राप्त करे? महाप्रभु पर्याय बिना की जो वस्तु है; राग तो नहीं, विकल्प तो नहीं, परन्तु पर्याय बिना की चीज़ है। क्योंकि पर्याय तो निर्णय करना है। पर्याय में पर्याय से ध्रुव का निर्णय करना है। तो जिसमें निर्णय करना है, वह चीज़ अन्दर में नहीं है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

**'यह विकल्प तोड़ दूँ' वह भी विकल्प ही है;...** आहाहा! **उसके उस पार भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है।** उसके उस पार—विकल्प के पार। आहाहा! **भिन्न ही चैतन्यपदार्थ है।** अन्दर भगवान चैतन्यपदार्थ तो विकल्प से भिन्न ही है। उसे पकड़े बिना, उसकी अनुभूति-अनुभव हुए बिना उसका सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहा..! सम्यग्दर्शन बिना धर्म की शुरुआत-प्रारम्भ भी होता नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ भगवान तेरी चीज़ तू ऐसी है। आहा! **उसका अस्तिपना ख्याल में आये,...** उसका अस्तिपना है, मौजूद है, स्थायी है, स्थिर है, नित्य है—ऐसा अस्तिपना ख्याल में आये **'मैं भिन्न हूँ,...** मैं तो राग से भी भिन्न हूँ और पर्याय से भिन्न हूँ। **यह मैं ज्ञायक भिन्न हूँ।** आहाहा! **ऐसा निरन्तर घोटन रहे...** आहाहा! समय कहाँ मिलता है? यहाँ तो कहते हैं, निरन्तर घोटन रहे। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा निरन्तर नित्य है, तो नित्य में पहुँचने के लिये निरन्तर घोटन चाहिए। आहाहा! समझ में आया? प्रभु नित्य है, अविनाशी अविचल है। तो उसको प्राप्त करने में निरन्तर उसका घोटन (चाहिए)। विकल्प नहीं, उसके सन्मुख घोटन (चलना)। आहाहा!

**निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है।** अन्तर सन्मुख होकर उसका रटन रहे, वह भी अच्छा है। उसका ही रटन। विकल्प का भी रटन छोड़ दे। आता है, व्यवहार है, परन्तु वह आदरणीय नहीं। व्यवहार तो समस्त लोकालोक, अपने सिवा सब चीज़ व्यवहार है। निश्चय में तो उसकी पर्याय भी व्यवहार है न! आहाहा! वह तो त्रिकाली भगवान अनन्त नित्य अविनाशी अविचल गुण का खजाना है। **उसको मैं ज्ञायक भिन्न हूँ' ऐसा निरन्तर घोटन रहे, वह भी अच्छा है।**

**पुरुषार्थ की उग्रता...** पुरुषार्थ की उग्रता। वीर्य को स्वभाव-सन्मुख करना, वीर्य-पुरुषार्थ जो पर सन्मुख अनादि से रहा है, उस पुरुषार्थ को स्वसन्मुख करना। **पुरुषार्थ की उग्रता तथा उस प्रकार का आरम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है।** आत्मा प्राप्त होता ही है। उस प्रकार का निरन्तर रटन रहे और प्राप्त न हो, ऐसा है नहीं। परन्तु इस प्रकार प्राप्त होता है, दूसरे प्रकार से प्राप्त होता नहीं। आहाहा! **उस प्रकार का आरम्भ हो तो मार्ग निकलता ही है। पहले विकल्प नहीं टूटता...** आहाहा! **परन्तु पहले पक्का निर्णय आता है।** अखण्डानन्द प्रभु अनन्त गुण की राशि, ऐसा पक्का निर्णय आता है। निर्णय बिना विकल्प टूटे नहीं। आहाहा! करना है तो यह है। लाख बात की बात अन्तर आणो, छोड़ी जगत द्वन्द्व-फन्द एक निज आतम ध्यावो। निज आतम ध्यावो - ऐसा कहा। वह यहाँ कहा। पहले पक्का निर्णय आता है। आहाहा! २७९ पूरा हुआ।

**यह जो बाह्य लोक है, उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है। बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया', परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं। बाहर से देखनेवाले मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं, परन्तु अन्तर में तो वे कहीं चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं॥२८२॥**

२८२। **यह जो बाह्य लोक है,...** विकल्प से लेकर जो बाह्य लोक है, **उससे चैतन्यलोक पृथक् ही है।** बाह्य लोक से चैतन्यलोक पृथक् ही है। आहाहा! बाह्य लोक में चैतन्य एकमेक होता नहीं और चैतन्य में वह एकमेक आता नहीं। ऐसा ही है। राग और भगवान आत्मा के बीच साँध है-सन्धि है। तड... तड हमारी काठियावाड़ी भाषा में तड़ कहते हैं। (दरार)। दरार है तो अन्दर जाती है। आहाहा! राग और आत्मा के बीच सन्धि है, प्रभु! उसमें सन्धि कर। आहाहा! **चैतन्यलोक पृथक् ही है।**

**बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया,...** बाहर की क्रिया देखे, उन्होंने यह किया, वह किया, यह छोड़ा, कपड़े छोड़े, खाना छोड़ा, रस छोड़ा, खाने में एक चीज़ खाते हैं, दूसरी छोड़ते हैं, वह सब बाह्य की बात है। वह कोई चीज़ से आत्मा की प्राप्ति होती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! **बाह्य में लोग देखते हैं कि 'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा**

**किया',...** स्त्री छोड़ दी, कुटुम्ब छोड़ दिया, दुकान छोड़ दी, धन्धा छोड़ दिया, उसमें क्या हुआ? प्रभु! विकल्प छोड़ दिया, ऐसा जब तक नहीं आये, तब तक कुछ छूटा नहीं। आहाहा!

**परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं,...** आहाहा! अन्तर में भगवान आत्मा जानने में-ज्ञान में, अनुभव में आया तो धर्मी अन्दर में कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, आहाहा! अन्तर की बात लोग नहीं जान सकते। आहाहा! बाह्य में तो चक्रवर्ती का राज है। अन्दर में भिन्न है। अन्दर में राग से भिन्न है। आहाहा! **'इन्होंने ऐसा किया, ऐसा किया', परन्तु अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं,...** आहा..! सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी, जिसने आत्मा का पता ले लिया, निर्विकल्प आत्मा विकल्प से पार, पर्याय में भी उससे पार, परन्तु पर्याय में निर्णय कर लिया। निर्णय तो पर्याय में होता है। वस्तु पर्याय से पार है। आहाहा! जिसका निर्णय करना है और जो निर्णय करता है, दोनों वस्तु भिन्न हैं। आहाहा! बहुत कठिन बात, प्रभु! निर्णय करती है पर्याय; निर्णय करने लायक ध्रुव। आहाहा! दो चीज़ भिन्न हैं। आहाहा! **अन्तर में ज्ञानी कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, वह तो ज्ञानी स्वयं ही जानते हैं।** धर्मी को खबर पड़े कि मैं कहाँ हूँ। बाहर के साधारण प्राणी बाह्य चेष्टा देखने से अनुमान कर ले कि यह ऐसा है। ऐसा है नहीं। आहाहा!

**बाहर से देखनेवाले मनुष्यों को ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं,...** आहाहा! अन्तर में विकल्प से रहित निरन्तर ज्ञानधारा (चलती है)। भेदज्ञान हुआ बाद में भेदज्ञान करना नहीं पड़ता। वह शुरु हो गया। राग से भिन्न हुआ तो भिन्न ही रहेगा। अन्दर में क्या होता है (वह ज्ञानी ही जानते हैं)। **ज्ञानी बाह्य में कुछ क्रियाएँ करते या विकल्पों में पड़ते दिखायी देते हैं, परन्तु अन्तर में तो वे कहीं चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं।** आहाहा! बाहर में विकल्प में दिखते हैं। बाह्य क्रिया करते दिखाई देते हैं, परन्तु अन्तर में.. आहाहा! चैतन्यलोक की गहराई में (विचरते हैं)। चैतन्यलोक अन्दर भगवान, उसकी गम्भीरता, उसकी गहनता.. आहाहा! ज्ञानी उसमें विचरते हैं। उसका पता बाह्य क्रियाकाण्डवाले को नहीं होता। बाह्य से देखता है कि इसने इतना त्याग किया, इसने त्याग नहीं किया, इसने किया,.. इसने यह किया.. आहाहा!

ज्ञानी को तो कदाचित् चारित्रमोह के उदय में कोई दोष भी आता है। परन्तु अन्दर में क्या है? आहाहा! अन्दर में आनन्द में रमते हैं। आहाहा! बाह्य की क्रिया भिन्न रह जाती है, विकल्प की क्रिया भी भिन्न रहती है। आहाहा! अन्दर में राग से, विकल्प से भिन्न ज्ञान में काम लेते हैं, वह बाहरवाले को दिखाई नहीं देता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! मूल बात तो यह है।

**चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं।** चैतन्यलोक की गम्भीरता, अनन्त गुण की गम्भीरता में धर्मी तो विचरते हैं। बाह्य क्रिया देखनेवाले को पता नहीं चलता। आहाहा! बाह्य क्रिया देखे, चारित्रमोह के उदय में जुड़ जाए, चारित्रदोष आ जाए, परन्तु अन्दर में क्या करते हैं... आहाहा! कठिन बात है। ९६ हजार स्त्री चक्रवर्ती को। फिर भी अन्दर में क्या करते हैं? सबसे भिन्न। उस ओर के विकल्प से भी भिन्न काम करते हैं। आहाहा! भिन्न काम जो अन्दर शुरु हो गया, वह क्या चीज़ है, उसका अज्ञानी पता नहीं लेता, अज्ञानी जान नहीं सकते। आहा..! बाह्य की क्रिया, कैसे निवृत्ति ली है, ऐसे पर उसका लक्ष्य है। **चैतन्यलोक की गहराई में विचरते हैं।** २८२ (पूरा हुआ)।

**ज्ञानी को 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है। वे भक्ति-शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं, तब भी उनकी ज्ञायकधारा तो अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है॥२९४॥**

**यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय या गुणभेद का स्वीकार नहीं है...**

**मुमुक्षु :-** ऊपर-ऊपर... मुमुक्षु को... २९४

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** २९४...

२९४। दो सौ चौरानवे कहते हैं न? **ज्ञानी को 'मैं ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है।** मैं ज्ञायक हूँ, यह दृष्टि और परिणति अखण्डित रहती है। किसी भी प्रसंग में बाह्य में आ जाओ, परन्तु अन्दर की दृष्टि टूटती नहीं। **ज्ञानी को 'मैं**

**ज्ञायक हूँ' ऐसी धारावाही...** धारावाही ज्ञानधारा। वह आत्मा है न कलश में? दो धारा साथ में चलती है। जब तक कर्म से भिन्न हो, ज्ञानधारा और कर्मधारा (दो धारा चलती है)। अन्दर आत्मा का ज्ञान का आनन्द, वह भी चले और राग का दोष हो, वह भी चले। (जब तक) वीतराग न हो जाए। परन्तु अन्दर में राग से भिन्न काम कैसे करते हैं, उसे लोग नहीं देख सकते। राग और राग की क्रिया देखते हैं। आहाहा! ऐसा स्वभाव। आहाहा! **ऐसी धारावाही परिणति अखण्डित रहती है।**

**वे भक्ति-...** भगवान की भक्ति, **शास्त्रस्वाध्याय आदि बाह्य प्रसंगों में उल्लासपूर्वक भाग लेते...** हैं। आहा..! बाहर में दिखे कि उल्लासपूर्वक भाग लेते हैं। **दिखायी देते हैं,... उल्लासपूर्वक भाग लेते दिखायी देते हैं,...** आहाहा! **तब भी उनकी ज्ञायकधारा...** आहा..! अन्दर में ज्ञायक-ज्ञानधारा जो आनन्दधारा प्रगट हुई है, वह अखण्डितरूप से अन्तर में, **अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है।** आहाहा! देह की क्रिया भी होती है, विकल्प भी दिखता है, परन्तु अन्दर में उससे भिन्न काम करते हैं। आहाहा! धर्मी की दृष्टि ध्रुव द्रव्य पर होती है। आहाहा! ध्रुव के अवलम्बन में ध्रुव का खेल खेलती है। आहाहा! पर ऊपर का लक्ष्य होने के बावजूद अन्तर में से छूट गया है। आहाहा! बाहर की क्रिया और विकल्प होने पर भी अन्तर में से छूट गया है। आहाहा! यह बात कौन जाने? बाहर देखनेवाला बाहर देखे। आहाहा!

एक जंगल में रहता है, कपड़े का टुकड़ा नहीं, बोलता नहीं, मौन रहता है और एक ज्ञानी लड़ाई में खड़ा हो, अब दोनों में भेद कैसे देखना? भले जंगल में अकेला रहता हो, परन्तु अन्दर विकल्प में एकता है। सब छोड़ दिया, परन्तु अन्दर विकल्प की एकता है तो मिथ्यात्व है। और यह लड़ाई में है, विकल्प की एकता टूट गयी है तो लड़ाई में भी वह समकिती है। क्षायिक समकिती है। आहाहा! कठिन बात। बाहर से नाप निकलना कठिन है। अन्तर की चीज़ का बाहर से नाप आना कठिन है। बाहर की चीज़ अन्दर में नहीं और अन्दर की चीज़ बाह्य में नहीं। आहाहा! दोनों भिन्न-भिन्न काम करती है। ऐसा नहीं देखता और बाहर से देखता है, वह ज्ञानी की पहिचान नहीं कर सकता। आहाहा! **अखण्डितरूप से अन्तर में भिन्न ही कार्य करती रहती है।** आहाहा!

**यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है, तथापि उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है और वीतरागता-अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है। जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है। आँख में किरकिरी नहीं समाती; उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता। यदि साधक को बाह्य में—प्रशस्त-अप्रशस्तराग में—दुःख न लगे और अन्तर में—वीतरागता में—सुख न लगे तो वह अन्तर में क्यों जाये ? कहीं राग के विषय में 'राग आग दहै' ऐसा कहा हो, कहीं प्रशस्तराग को 'विषकुम्भ' कहा हो, चाहे जिस भाषा में कहा हो, सर्वत्र भाव एक ही है कि—विभाव का अंश, वह दुःखरूप है। भले ही उच्च में उच्च शुभभावरूप या अतिसूक्ष्म रागरूप प्रवृत्ति हो, तथापि जितनी प्रवृत्ति, उतनी आकुलता है और जितना निवृत्त होकर स्वरूप में लीन हुआ, उतनी शान्ति एवं स्वरूपानन्द है॥२९५॥**

२९५। **यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का...** आहाहा! कोई भी पर्याय का **या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** सूक्ष्म बात है, भगवान! दृष्टि जहाँ आत्मा की हुई, सम्यक् अनुभव (हुआ), उसको... आहाहा! **दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का...** किसी पर्याय का। अपनी कोई भी पर्याय हो, किसी पर्याय का **या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** आहाहा! क्योंकि अभेद पर दृष्टि पड़ी है। अभेद में दृष्टि का विषय अन्दर में से ले लिया है। दृष्टि का विषय अभेद अन्दर में ले लिया है। अतीन्द्रिय आनन्द की धारा चलती है। आहाहा! **दृष्टि-अपेक्षा से साधक को किसी पर्याय का...** कोई पर्याय का। आहाहा! **या गुणभेद का...** ओहोहो! आत्मा आनन्द है, अनन्त ज्ञान है, भगवान उसका धरनेवाला है, गुणी का गुण है और गुण गुणी का है,.. आहा...! ऐसे भेद का भी स्वीकार नहीं। आहाहा!

**मुमुक्षु :-** चमत्कारिक बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :-** चमत्कारिक बात है। वचनामृत। आहाहा!

अनुभव में से बात बाहर निकल गयी है, बाहर आ गयी है। जगत को रुचे, न रुचे स्वतन्त्र है। बात कोई अलौकिक है! कहा न?

**यद्यपि दृष्टि-अपेक्षा से साधक को...** साधक को **किसी पर्याय का...** कोई भी पर्याय का पक्ष नहीं है। **या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** पर्याय का और गुणभेद का। ओहोहो! दृष्टि तो त्रिकाली अभेद में एकाकार हो गयी है। एकाकार का अर्थ उस ओर झुक गयी है। पर्याय और द्रव्य एक होते नहीं। उस ओर झुक गयी तो उसको एकाकार कहने में आता है। आहाहा! एक पर्याय अन्दर में झुक गयी तो (भी) द्रव्य पर्याय को स्वीकारता नहीं। आहाहा!

**तथापि उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है।** तथापि धर्मी को.. आहाहा! स्वरूप में स्थिर होने की भावना तो वर्तती है। तथापि **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** आहा..! उसको राग दुःखरूप लगता है। महाव्रत का परिणाम, परमात्मा की भक्ति में उल्लास दिखे, आठवें द्वीप में नन्दीश्वर में इन्द्र जाते हैं। घुँघरू बाँधकर नाचते हैं। बाहर की क्रिया दुनिया देखे, परन्तु अन्दर में उसको कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! एकावतारी है। शक्रेन्द्र ३२ लाख विमान का स्वामी। एक पर्याय का भी स्वामी नहीं है। एक पर्याय का भी स्वीकार नहीं। पर्याय ने द्रव्य का स्वीकार किया तो अब पर्याय का स्वीकार नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। अन्तर की बात है।

**स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। रागांशरूप बहिर्मुखता...** आहाहा! राग का अंश आता है। चारित्र का दोष होता है। आहाहा! समकिती को क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा। उसका पुत्र जेल में से छुड़ाने आया। हाथ में हथियार लेकर तोड़ने को आया। उन्हें शंका हुई। है सम्यग्ज्ञानी, है क्षायिक समकिती। वहम पड़ गया कि यह मुझे मारने आ रहा है। आहाहा! फिर भी वह ज्ञान मिथ्याज्ञान नहीं है। समझ में आया?

कोणिक आता है, उसका लड़का कोणिक। कोणिक जब गर्भ में था तो बुरे (सपने) आते थे, उसकी माता को बुरे स्वप्न आते थे। श्रेणिक राजा का कलेजा खा जाऊँ। ऐसे। श्रेणिक राजा की रानी को बालक आया। उसे लगा, ऐसा स्वप्न आया तो उसके पिताजी को क्या करेगा? जैसा आया वैसा, कचरे के ढ़ेर में डाल दिया। आहाहा! श्रेणिक राजा आते हैं। क्या हुआ? बालक कहाँ है? प्रसव हो गया है। बालक को मैंने कचरे के

ढ़ेर में... हमारी भाषा उकरडा, उसमें फैंक दिया है। क्योंकि जब वह (गर्भ में) था, तो आपका कलेजा खाने का स्वप्न आया था। आपका कलेजा खाना है, ऐसा सपना आता था। तो भी श्रेणिक राजा... अन्दर में तो क्षायिक समकित पड़ा है। आहाहा! बाहर से... अरे..! कहाँ लड़का पड़ा है? कचरे के ढ़ेर में। वहाँ गये, वहाँ गये। उठा लिया बालक को। बालक तो अभी ताजा था। वहाँ मुर्गा था। चोंच मारी होगी। परु हो गया। पीड़ा.. पीड़ा... पीड़ा। बालक रोता था। एक दिन का बालक था। रोता था। पिताजी... आहाहा! क्षायिक समकिती। क्रिया ऐसी दिखे। आहा..! उसका हाथ चूसते थे। अरेरे! इस बच्चे को ऐसा दुःख! उसकी स्त्री को सपना आया था, वह भूल गया। रोता है तो छोड़ दे। यह बालक अभी दुःखी है। आहाहा! मुर्गे ने चोंच मारी है तो अंगुली में मवाद हो गया है, खून में मवाद हो गया है। तो स्वयं चूसते हैं, खून चूसते हैं। आहाहा! कोई देखे कि अरेरे! इतना प्रेम! बालक को इतना प्रेम! जिसका मवाद चूसते हैं। प्रभु! वह क्रिया भिन्न है। हों! आहाहा! अन्तर की क्रिया भिन्न है। आहाहा! अन्तर में तो क्षायिक समति है कि जिस समकित को ठेठ केवलज्ञान में ले जाना है। वही समकित सिद्ध में जाएगा। आहा...!

उसकी यह क्रिया देखकर अज्ञानी को ऐसा लगे, यह क्या करते हैं? परन्तु वह क्रिया होनेवाली हो तो हो, अन्तर्दृष्टि तो आत्मा पर-आनन्द पर है, वह किसी को स्वीकारती नहीं। विकल्प को चूसने की क्रिया को स्वीकार नहीं करती। वह क्रिया मेरी नहीं और मैं कर्ता नहीं। आहाहा! चूसने की क्रिया होती है तो वह क्रिया मेरी नहीं और मैं कर्ता नहीं। आहाहा! ऐसी अन्दर में क्षायिक समकित में परिणति निरन्तर धारा बहती है। आहा..! अन्तर धारा और बाहर की क्रिया में बहुत अन्तर है। ज्ञानधारा भिन्न है।

यह कहते हैं, **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** ज्ञानी को भी... यह बात बैठती नहीं थी न, दीपचन्दजी सेठिया। सरदारशहर। यहाँ बारह महीने में एक बार आठ दिन आये। उसमें सोगानी का पढ़ा। सोगानी का द्रव्यदृष्टि प्रकाश। उनको सहन नहीं हुआ। ये कौन जागा? ये तो शुभभाव को भी दुःख कहते हैं। उसमें ऐसा हो गया कि ज्ञानी को दुःख होता ही नहीं, दुःख वेदे, वह ज्ञानी नहीं। ऐसी दृष्टि बदल गयी। आहा..! विरोध हो गया था। ज्ञानी को दुःख है ही नहीं। यहाँ बहिन काती है, ज्ञानी को **रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** जितना राग है, इतना दुःख

है। तीन कषाय गया नहीं। श्रेणिक राजा को क्षायिक समकित है। एक कषाय गयी है। तीन कषाय नहीं गये हैं तो तीन कषाय का दु:ख है। आहाहा! भले उसे भिन्न जानते हैं, परन्तु वेदन में है। जितना कषाय गया, उतना आनन्द का वेदन है। आहाहा! जितना कषाय रहा, उतना दु:ख का वेदन है। समकिती को दो वेदन है।

बड़ी चर्चा दीपचन्दजी से विरोध हो गया था। दीपचन्दजी... भाई ने कहा था न। सोगानी। समकिती को शुभभाव भी दु:खरूप लगता है। वह उन्हें नहीं जँचा। यहाँ बारह महीने में आठ दिन आते थे। प्रेम बहुत था। परन्तु आखिर में द्रव्यदृष्टि (प्रकाश) देखकर फेरफार हो गया। ज्ञानी को दु:ख होता ही नहीं। दु:ख वेदे, वह तीव्र कषाय है-ऐसा कहते थे। यहाँ तो रागांश है, ऐसा कहते हैं। तीव्र कषाय नहीं। तीव्र कषाय तो समकिती को गया है। अनन्तानुबन्धी तो गया है। आहाहा!

**रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दु:खरूप से वेदन में आती है...** दु:खरूप दिखता है। आहाहा! कोई चीज़ दु:खरूप नहीं लगती। चीज़ पर लक्ष्य जाता है, वह दु:खरूप लगता है। चीज़ को तो छूते भी नहीं। एक चीज़ दूसरी चीज़ को छूती नहीं। वह तो तीसरी गाथा में आया। समयसार। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी चूमता नहीं, छूता नहीं, स्पर्श करता नहीं, प्रवेश करता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा! फिर भी धर्मी-समकिती को कमजोरी से चारित्र का दोष आता है। वह दु:ख का वेदन है। आहाहा! एक ओर आनन्द का वेदन है, एक ओर दु:ख का वेदन है। आहाहा! गजब बात, प्रभु! तीर्थंकर त्रिलोकनाथ परमात्मा के अभिप्राय का हृदय कोई अलौकिक है! दुनिया में कहीं नहीं है। आहा..! ऐसी चीज़ है।

यहाँ कहा, रागांश लिया न? क्योंकि समकिती तो है। वह तो कहा। दृष्टि अपेक्षा से तो कहा है। साधक तो लिया है। साधक तो है। **किसी पर्याय का या गुणभेद का स्वीकार नहीं है,...** इतना स्वीकार नहीं है, फिर भी **तथापि...** तो भी। आहाहा! **उसे स्वरूप में स्थिर हो जाने की भावना तो वर्तती है। तथापि रागांशरूप बहिर्मुखता...** आहाहा! चारित्रदोष दूसरी चीज़ है, समकित चीज़ दूसरी है। एक गुण का दोष यदि दूसरे गुण को करे तो गुण उत्पन्न होता ही नहीं। चारित्र का दोष समकित को बिल्कुल अवरोध नहीं करता। आहाहा! वह अस्थिरता का दोष है, समकित में पूरे चैतन्य का अन्दर से आदर हुआ है। पूर्णानन्द का नाथ का आदर है। वहाँ राग का अंश आता है। आदर नहीं, स्वीकार

नहीं, फिर भी वेदन है। आहाहा! क्योंकि अपनी पर्याय में है न। दूसरे में नहीं होता। आहाहा!

**रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है...** आहाहा! श्रेणिक राजा लड़के को चूसते हैं, उस समय जो राग आया है, उसको दुःख का वेदन है। आहाहा! आत्मा का भाव तो है ही, परन्तु चूसते समय राग है। धन्नालालजी! राग का वेदन है। आहाहा! तीर्थंकर होंगे। अभी भी तीर्थंकरगोत्र बाँधते हैं। नरक में भी तीर्थंकरगोत्र समय-समय में बाँधते हैं। यहाँ से शुरु हो गया है। वहाँ से निकलेंगे, तब तक बाँधेगे। आहाहा! और माता के पेट में आयेंगे... आहाहा! इन्द्र, उनका आना ख्याल में है, तो इन्द्र माता के पेट को साफ करते हैं। जैसे कोई बड़ा आदमी आये तो जमीने आदि साफ करते हैं, वैसे इन्द्र... आहाहा! इन्द्र भी समकिती है, एकावतारी है, अभी, अभी। आहाहा! श्रेणिक राजा अभी चौथे गुणस्थान में है। तीर्थंकर होनेवाले हैं। माता के पेट में आनेवाले हैं तो माता का पेट साफ करते हैं। जैसे सिंहासन साफ करे, वैसे। सवा नव महीने... आहाहा!

माता के पेट में क्षायिक समकिती तीर्थंकर का जीव, बाहर निकलकर तीर्थंकर होंगे, आहाहा! अभी जन्म होगा, तब इन्द्र आकर माता को पाद वन्दन करेगा। जनेता! माता! तुझे पहले नमस्कार! ऐसे पुत्र को जन्म दिया। ऐसा पाठ है। आहाहा! जगत का कल्याण करने में निमित्त होंगे। ऐसे पुत्र को माता! तूने जन्म दिया। जनेता! तू उनकी जनेता नहीं, तू पूरे जगत की माता है। आहाहा! माता! तुझे हम नमस्कार करते हैं। बाद में पुत्र को नमस्कार करते हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ में दर्शन भिन्न है, दोष भिन्न है। श्रेणिक को भी भिन्न है, इन्द्र को भी भिन्न है। आहाहा! इन्द्र भी समकिती है। शास्त्र में लेख है, वहाँ से निकलकर मोक्ष जाता है। आहाहा!

यह कहा था न एक बार? भगवान जब मोक्ष पधारे, (तब) भरत अष्टापद पर्वत पर भरत गये। ऐसे देखा तो जीवरहित। आँख में आँसू की धारा चली। पिता को देखकर, देह छूट गया, आँसू की धारा (चलती है)। इन्द्र आया। इन्द्र भी साथ में था। भैया! क्या करते हो? क्या है? क्यों रोते हो? आपका अन्तिम देह है, मुझे तो अभी एक देह धारण करना है। देव कहते हैं, अभी तो मुझे एक देह धारण करना है। तेरा तो यह अन्तिम देह है। इन्द्र! सब ख्याल में है। ऐसा कहा। सब ख्याल में है, बापू! परन्तु राग का काम राग करता है,

हमारा काम हम करते हैं। ये दो चीज़ की भिन्नता जानना। आहाहा! सम्यग्दर्शन और राग, एक समय में दोनों होते हैं। उसका वेदन भी है। वेदन नहीं है, ऐसा नहीं। वेदन करे, इसलिए तीव्र कषायवन्त है, ऐसा है नहीं।

**रागांशरूप बहिर्मुखता उसे दुःखरूप से वेदन में आती है और वीतरागता-...** साथ में वीतरागता है, उतने **अंशरूप अन्तर्मुखता सुखरूप से वेदन में आती है।** एक समय में एकसाथ। आहाहा! साधक जीव को, साधक को कहा न? ऊपर साधक। **दृष्टि-अपेक्षा से साधक को...** ऐसा आया है। अपने स्वभाव सन्मुख का आनन्द भी है और राग भी आता है, क्रियाकाण्ड का अनेक प्रकार का, उसका दुःख भी है। आहाहा! दोनों एकसाथ हैं।

मिथ्यादृष्टि को पूर्ण दुःख है, केवली को पूर्ण सुख है, साधक को अपूर्ण आनन्द और अपूर्ण दुःख है। आहाहा! मिथ्यादृष्टि को पूर्ण दुःख। चाहे राजा हो, बड़ा करोड़पति, अरबपति हो, सुन्दर रूप हो, बाहर में खाने-पीने में मौज करता हो, महादुःखी है, कषाय है। आहाहा! और समकिती सुखी है। नरक में भी जितना राग गया, उतना सुखी है। श्रेणिक राजा को अनन्तानुबन्धी गया है, उतना तो सुख है वहाँ नरक में भी। जितना कषाय है, उतना दुःख है। साधक को बाधकपना बाकी है। नहीं तो साधक क्यों कहा? नहीं तो साध्य पूर्ण हो जाना चाहिए। आहा...! थोड़ा राग है, उतना वेदन आता है।

**जो आंशिक बहिर्मुख वृत्ति वर्तती हो, उससे साधक न्यारा का न्यारा रहता है।** आहाहा! विशेष है। **आँख में किरकिरी नहीं समाती;...** आँख में रजकण नहीं समाता। **उसी प्रकार चैतन्यपरिणति में विभाव नहीं समाता।** चैतन्य की आनन्द परिणति में विभाव नहीं आता। जैसे आँख में रजकण नहीं समाता, वैसे चैतन्य में (विभाव) नहीं समाता। विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)